पाण्डुलिपिः

और थोड़ी सी षर्म दे मौला

कविता संग्रह

अनवर सुहैल

दुआ

अक़्ल वालों को

अक़्ल दे मौला

इल्म वालों को

इल्म दे मौला

धर्म वालांे को

धर्म दे मौला

और थोड़ी सी

षर्म दे मौला!

- बम और अनाज

(अफ़गानिस्तान पर अमेरिकी हमला)

ये है हमारा

ताज़ातरीन

नमूना-ए-इन्साफ़

बाग़ियांे के लिए बम

और वहां की अवाम के लिए अनाज

वाह भई वाह!

- मुहम्मद अली सराय और

मियां जब्बार

(नागपुर के बुनकरों पर एक कविता)

खट्-खट्, खटर-खटर

हथकरघे से उठती आवाज़ें निरंतर

एक जादू की तरह

तैयार होती डिज़ाइनों के जादूगर

मियां जब्बार...

मियां जब्बार का

सात वर्षीय बालक

पढ़ने-लिखने की नाज़ुक उम्र में

रंग-बिरंगे धागों की

बना रहा घिर्रियां

मियां जब्बार की बीवी

अठमासा पेट लिए

तैयार साड़ियों के

कुतर रही फालतू धागे

मियां जब्बार की

चैदह वर्षीया बेटी

सिर और सीना दुपट्टे से ढांपे

तैयार कपड़ों को

जतन से तह लगा रही

मियां जब्बार हमें

समझाते जा रहे

काम की बारीकियां

ये जाने बगैर

कि तफ़रीहन पूछा था हमने

कि कैसे बन जाती हैं

सुर्ख, चटख़, षोख़ रंगों वाली

जादूभरी नागपुरी साड़ियां

मेरा दुनियादार मित्र ऊबकर

कुहनियों से कांेचता है

कहां भिड़ गए यार!

इन सबसे बेखबर

मियां जब्बार

अपनी रौ में बताते जा रहे

बुनकरी की बारीकियां

किस तरह फंसाए जाते

धागों के मकड़जाल

पावरलूम में किस तरह

कारीगर की ज़रा सी चूक

बर्बाद कर सकती कच्चा माल

या तेज़ चलती गिन्नियों से

जख़्मी हो सकतीं

कारीगर की करामाती उंगलियां

'वाकई कितना जोखिम है।

मित्र का चलताऊ कमेंट

और मियां जब्बार की हंसी--

'रिस्क तो लेना ही पड़ता है साब!'

मुझे सचमुच आष्चर्य है

कि इतना कठिन जीवन

हंस कर गुज़ारते कैसे मियां जब्बार

पावरलूम के साथ

पावरलूम का एक पुर्जा बनकर करना काम

जबकि जेहन में हों मौजूद

बाल-बच्चों की ज़रूरतें

लकवाग्रस्त अब्बा की दवाईयां

मकान का किराया

कारीगरों की तनख्वाह

महाजनों का सूखा व्यवहार.

सरकार ने तोड़ दी कमर हमारी हुज़ूर

वरना पहले हम भी

हुआ करते थे सरकारी मुलाजिम

अदा करते थे आयकर

बच्चे हमारे पढ़ते थे पब्लिक स्कूलों में

तब हम भी सुबह पढ़ते थे अख़बार

छुट्टी कि दिन बीवीबच्चों के संग

सीताबर्डी या इतवारी में करते थे खरीददारी

नाक पोंछती बिटिया को दुलारते मियां जब्बार

समझाते जाते धंधे की ऊंचनीच

सावन-भादों का महीना

मं्ादी के कारण कम हुए काम

नतीजतन कारीगर की रोजी कर दी आधी

इतवारी के सेठ-महाजन

मीन-मेख निकाल

औने-पौने खरीदते तैयार माल

क्या करें जनाब

है बहुत बुरा हाल...

 सरगुजा

पांव-पांव चलते बच्चे सा

खड़ा होता

गिर पड़ता

डगमग सरगुजा

क्या वंचित रह जाएगा

पैजनिया बजाती

ठुमुक-ठुमुक चाल से भी

क्या सरगुजा

तरसता रहेगा

अपने ही जंगल-नदिया

पर्वत-पठारों से

मिलने-गपियाने से

भयभीत हैं सरगुजिहा,

आंवला, महुआ, चिरौंजी

सब ले जाएंगे व्यापारी

फगुनाहट में बौराए

पलाष वनों का सुलगता खौ़फ़

सदियों से उन्हें यूं ही डराता रहेगा

क्या हमेषा की तरह

यहां रातों-रात

चमकती रहेंगी आरियां

घुरघुराते रहेंगे ट्रक

तब्दील होंगे सागौन के वृक्ष

पलंग-सोफा-दीवान

दरवाज़ों-चैखटों में

मचान बनाने के लिए

या जलावन के लिए

सूखी टहनियां बीनते सरगुजिहा

अकारण बेड़ दिये जाएंगे

सरकारी काल-कोठरियों में

सरगुजिहा जानते नहीं

उनकी जन्मभूमि के गर्भ मंे

छिपा है

कोयला, बाक्साईट, यूरेनियम

जिसे चुरा ले जा रहे परदेसी चोर

विस्फोटकी धमाकों से

थर्रा जाते जंगल, झरने, पठार

अषान्त होते पषु-पक्षी

नाराज़ है वनदेवी

जिसका कोप

भुखमरी, बिमारी और मौत के रूप में

अक्सर झेलते ही हैं सरगुजिहा

कहते हैं

कि कोयले से बन्ती बिजली

जगमगाते जिससे षहर

अपनी ज़रूरतों से बेखबर

चांद और जुगनुओं के मद्धम प्रकाष में

ऊंघता सरगुजा

रत्ती भर रोषनी के बदले

मिलती जिसे उपेक्षाएं निरंतर...

प्रेम के भूखे सरगुजिहों से

कभी प्रभु यीषु के भक्तिगीत गवाती

कभी 'घर-वापसी' की कवायद कराती

कभी किसी विचारधारा का दबाव

आदिवासी समाज को

आन्दोलन की राह दिखा

नक्सलबाड़ी में

कर देता तब्दील...

नाटे-काले सरगुजिहा

बित्ते भर कपड़े के बूते

गुज़ारते एक पूरा जीवन

इन्हें देख

अक्सर हंसा करते

अम्बिकापुर-वासी

''सरगुजिहा लोगों की चमड़ी मर जाती है

न धूप से जलती

न जाड़ा से कांपती

न बरखा से खियाती

ऐसी ढीठ होती चमड़ी इनकी..''

 अप्रांसगिक

समकालीन हिन्दी कविता के

गम्भीर धुरंधरों को

मेरे उद्गारों पर

दिखलाई दी

रूप-रस-गंध

प्रतीक-बिम्ब-छंद और

काव्यानुषासन की

कमी ही कमी

मैं उन्हें कैसे बताऊं

भूमिगत कोयला खदान के

अप्राकृतिक वातावरण में

हाड़-तोड़ श्रम के बाद

खत्म हो जाती हैं सम्भावनाएं

सूख जाते स्रोत

सम्वेदनाओं के....

बकौल 'फ़ैज़'

'इतनी हिम्मत है कि हम

फिर भी जिए जाते हैं

जिन्दगी की खुरदुरीधूसर राहों में

हम आषा और विष्वास के गीत गाते हैं।

 ज़िद

('षेष' के सम्पादक हसन जमाल पर)

चाहता तो हूं

कि आम आदमी की तरह

खुष दिखूं

और लगूं बेपरवाह

अलमस्त

बिन्दास

लेकिन उस ज़िद का क्या करूं

उस ख़्वाब का क्या करूं

उन सोचों का क्या करूं

जो जिस्मो-रूह में वाबस्ता हैं

जिनके एवज़ अक्सर

हो जाता हूं

कजऱ्दार

गमज़दा

कभी टनों भारी

कभी एकदम ख़ाली...

 कहा आपने

कहा आपने

बरखा होगी, फसल उगेगी

भर-भर जाएगा खलिहान

कहा आपने

षासन यह जनता ही का

हंसी-खुषी किया मतदान

कहा आपने

स्वप्न हुए साकार

भूखा-नंगा कोई नहीं

ऊंचा-नीचा कोई नहीं

अगड़ा-पिछड़ा कोई नहीं

सब होठों पर खिला करेगी

मंद-मंद मुस्कान

कहा आपने

माना हमने

Thank You for previewing this eBook

You can read the full version of this eBook in different formats:

- HTML (Free /Available to everyone)
- PDF / TXT (Available to V.I.P. members. Free Standard members can access up to 5 PDF/TXT eBooks per month each month)
- Epub & Mobipocket (Exclusive to V.I.P. members)

To download this full book, simply select the format you desire below